मगसिर शुक्ल ८, शनिवार, दिनांक २१-१२-१९७४, श्लोक-५, प्रवचन-११

टीका का अर्थ चलता है। **परमात्मा कैसे होते हैं?** पाठ है न इतना? **'परमात्माऽतिनिर्मलः'** मूल पाठ, पाँचवीं गाथा। परमात्मा **अति निर्मल हैं,....** निर्मल है अर्थात् जरा फिर नास्ति का (कहते हैं)। **जिनके अशेष (समस्त) कर्ममल नष्ट हो गया है,....** मल कहना है न इसलिए। कर्ममल नाश पाता है। कर्म नाश नहीं पाते। यह तो कर्ममल।

मुमुक्षु : भाव को भी कहा जाता है और द्रव्य को भी कहा जाता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। मूल तो भाव को कहते हैं, द्रव्य तो.... उसे क्या कहे? आहाहा!

भावार्थ - जो शरीरादि बाह्यपदार्थों में.... शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, व्यापार, धन्धा यह सब पर चीज़ है। उसे मैं करता हूँ, ऐसा माननेवाला उस पर को ही अपना मानता है। समझ में आया? वह **उन्हें ही आत्मा मानता है,... बाह्यपदार्थों में आत्मा की भ्रान्ति करता है,....** भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। वास्तव में तो उसकी (अपनी) पर्याय होती है, उसका वह आत्मद्रव्य कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसके बदले मेरी उपस्थिति में यह सब व्यवस्था होती है.... पोपटभाई! टाईल्स की और सब। आहाहा! यह जगत के पदार्थ हैं। उसका उसकी अवस्था का काल है, इसलिए उस पदार्थ में उस काल में वह कार्य होता है। ....भाई! यह ...प्रसन्न हो गये। भावपाहुड़ है। भावपाहुड़। ऐसा कि वैराग्य का.... भावपाहुड़।

मुमुक्षु : किस प्रकार का दुःख भोगे....

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने दुःख का वर्णन। आहाहा! यह छहढाला में है पहली (ढाल) में। यह तो आचार्य के कथन हैं न? आहाहा! भाई! तूने ऐसे दुःख भोगे हैं। तेरी माता तू मर गया उसमें जो रोई, ऐसी माताओं के रोने के पानी (आँसू) इकट्ठे करे, (उसके) अनन्त समुद्र भर जायें। भाई! तूने ऐसे दुःख भोगे हैं। चैतन्य आनन्दस्वरूप है, उसका आश्रय लिया नहीं। आहाहा! बाहर तो अभी धमाल चलती है। लेखों में आता

है.... ओहोहो! अरे! मार्ग अलग है, प्रभु! इसने आत्मा को.... यहाँ तक आया है न? कि तू द्रव्यलिंगी साधु इतनी बार हुआ कि कोई स्थल तेरे द्रव्यलिंगी में जन्मे और मरे बिना रहा नहीं। आहाहा! द्रव्यलिंगी।

मुमुक्षु : ऐसा तो अनन्त बार हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार। बापू!

मुमुक्षु : कोई क्षेत्र बाकी नहीं रखा जहाँ द्रव्यलिंगीरूप से न हुआ हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....ऐसा कि कहीं बाहर का छोड़ा.... तेरी पुण्यप्रकृति की... है। ...आहाहा!

हे मुनिवर! हे मित्र! ऐसा कहकर कहते हैं। आहाहा! पोपटभाई! आया था न सवेरे? सुमनभाई तो बहुत प्रसन्न हुए। आज तो ओहोहो! गाथा-गाथा में वैराग्य। आहाहा! यह तो वस्तु का स्वरूप पर से भिन्न है, इसलिए पर से तो जीव उदास ही हो। समझ में आया? अरे! स्वयं कौन है और कैसा है, उसकी इसने प्रयोजन सिद्धि नहीं की। बाकी सब दुनिया में यह चले और यह चले। दुनिया में कुछ गिनवाने के लिये, कुछ लेख उसमें लेख ले हमारा। आहाहा! भाई! तुझे प्रसिद्धि में पड़कर कहाँ जाना है? आहाहा! प्रभु तो चैतन्यमूर्ति है न, नाथ! आहाहा! यह वह राग का कर्ता हो, यह तो कहीं रह गया। वह तो समय की पर्याय का भी कर्ता नहीं। क्योंकि ध्रुवपना तो एकरूप सदा है और उसकी पर्याय तो विविध प्रकार की एकविधता छोड़कर होती है। वह ध्रुव से होती हो, तब तो एकधारा सरीखी होनी चाहिए। न्याय समझ में आया? आहाहा! सुमनभाई!

फिर से। यह तो बहुत बार कहा गया है। यह आत्मा, उसकी जो दशा हो निर्मल, हों! वह भी यदि गुण से होती हो तो गुण तो त्रिकाल एकरूप है। उसकी दशा एकरूप सरीखी होना चाहिए। आहाहा! यह केवलज्ञान के समय भी है, उसमें भी अन्तर है। उसे उदय का अन्तर है। यह आता है न परमार्थ वचनिका में? परमार्थ वचनिका में आता है। केवली को भी एक प्रकार का.... आता है परमार्थ वचनिका में। आहाहा! क्योंकि उदय की जाति उस क्षण उसी प्रकार की होने के काल में वह होती है। उसका

कर्ता तो आत्मा है नहीं। क्योंकि उसका अस्तित्व है, वह तो विकारी है। भगवान आत्मा का अस्तित्व तो निर्दोष-निर्मल है। आहाहा!

निर्मल भगवान आत्मा। भले अन्तरात्मा हो। यह तो परमात्मा की बात की, वह तो निर्मल है। आहाहा! भगवान ही है, भाई! ऐसी चीज़ में से पर्याय की विविधता एक प्रकार की नहीं, तो गुण और द्रव्य एक जातिरूप कायम है। उनसे यदि दशा हो परमार्थ से.... आहाहा! तो एक सरीखी होनी चाहिए। गुण और द्रव्य तो समान त्रिकाल हैं। आहाहा! महेन्द्रभाई! आहाहा! इससे उसकी पर्याय का भी स्वतन्त्रपना है। आहाहा! द्रव्य के आश्रय से होने पर भी, निर्मल (पर्याय को) आश्रय द्रव्य का है, तथापि मोक्षमार्ग की पर्याय थोड़ी शुद्धि, उससे विशेष शुद्धि.... उससे विशेष शुद्धि.... द्रव्य और गुण यदि वास्तव में कारण हो, तब तो समान.... समझ में आया? अहो! यह आयेगा न? प्रवचनसार में। द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। (गाथा) १०७। अब आयेगा। तीन सत् है। मूल पाठ है।

मुमुक्षु : सत् का विस्तार।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सत् का विस्तार है। आहाहा! १०७वीं गाथा है। १०७। द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। आहाहा! सत् पर्याय है, उसे सत् दूसरा करे कैसे? है, उसे दूसरा करे, यह किस प्रकार? आहाहा! उस चीज़ को ही.... यह शास्त्र बनाना, शास्त्र बने, मुझसे किये गये। आहाहा! भाई! कहीं भी शास्त्र की परमाणु की उत्पत्ति की पर्याय में तेरी सत्ता प्रवेश की थी वहाँ? आहाहा! अरे! वाणी के रजकण वाणी के काल में होते हैं, भाई! तेरे आत्मा से वे भाषा के परमाणु आवें? उस भाषा की पर्याय का अस्तित्व तो उस समय में उस प्रकार के रजकण में उत्पन्न होने का उसका काल है तो होता है। आहाहा! कठिन बातें बहुत, भाई! क्या करे? नियत हो जाये। बापू! नियत ही है। वस्तु है, वह नियत ही है। द्रव्य निश्चय तो गुण निश्चय और पर्याय निश्चय। आहाहा!

चिद्विलास में डाला है। उस समय उसका विकार हो, उसका आत्मा कर्ता किस प्रकार होगा? क्योंकि सत् है, उसे हेतु क्या पर का? आहाहा! ऐसा इसे अन्तर में

भाव बैठना चाहिए। भगवान आत्मा ध्रुव आनन्दरूप सदृश्य और पर्याय में विसदृश्यता है। एक उपजे और एक जाये, एक हो और एक जाये। और यह तो है, वह है अन्दर। आहाहा! समझ में आया? यह तो परम सर्वज्ञ की बातें हैं, बापू! साधारण यह सब दीक्षा लेकर बैठे बेचारे। हैरान है। किसे दीक्षा कहना, भाई!

चैतन्य की जाति को, द्रव्य-गुण के तत्त्व को भी कितना है? उसे जिसने अभी दृष्टि में लिया नहीं, तो वहाँ स्थिर होना है, ऐसा चारित्र तो कहाँ से होगा? आहाहा! भाई! तेरा तिरस्कार करने के लिये यह ऐसा नहीं है, भाई! वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया? जो भगवान आत्मा एकरूप.... आता है न सदृश्य-विसदृश्य। उसमें आता है। समयसार, नहीं? विरुद्ध और अविरुद्ध। विरुद्ध-अविरुद्ध कार्य से जगत टिक रहा है। इसका अर्थ फिर धवल में किया है। धवल में। कि पर्याय, वह विसदृश है, गुण वे सदृश हैं। आहाहा! ऐसा पाठ है। ओहोहो! विसदृश धारा, व्यय-उत्पाद... व्यय-उत्पाद.... व्यय-उत्पाद उसे सदृश क्या करे? कहते हैं। समझ में आया? अत्यन्त ज्ञाता-दृष्टा ऐसा भगवान, उसकी पर्याय को भी करे, ऐसा यदि कहने जावे तो मिलान नहीं खाये। आहाहा! वह पर्याय भी उस काल में धर्म की, चारित्र की, सम्यग्दर्शन की.... आहाहा! स्वतन्त्र है। उस काल में वह स्वतन्त्र (होती) है। उसका कर्ता यदि मानोगे तो उसका एकरूप है, उसकी एकरूप दशा होनी चाहिए। यह तो निचली दशा में एक पर्याय का स्वतन्त्रपना सिद्ध करने के लिये बात है। पश्चात् भी केवलज्ञान में भी ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **जो शरीरादि बाह्यपदार्थों में आत्मा की भ्रान्ति करता है,....** आहाहा! अभी तो पर्याय का भी कर्ता नहीं, उसके बदले यह राग का कर्ता और राग मेरा (माने).... आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह भाव मेरा, यह वस्तु में नहीं, और बहिर् में है, उसे आत्मा मानना, वह बहिरात्मा है। आहाहा! सीधी बात है, भाई!

सवेरे आया था कि भाई! तेरे मरण के समय तेरी माँ ने.... एक जन्म की नहीं। अन्य-अन्य जन्म की.... आया था न? सुमनभाई! उसमें आया था। अन्य-अन्य माता। आहाहा! भाई! तेरे मरण काल में वह तेरी माँ रोई है, उसके आँसु का कोई.... इकट्ठा

करे तो अनन्त समुद्र भर जायें। अरेरे! ऐसा भव! आहाहा! समझ में आया? इस भव का नाश करने का उपाय यदि नहीं जाना तो यह तो भव.... वस्तु क्या? वह तो अनादि की है। समझ में आया? साधारण मनुष्य के साथ मिलान नहीं खाता, भाई! मेल नहीं खाये, इसलिए कहीं वस्तु दूसरी हो जायेगी?

कहते हैं कि यह बाह्य पदार्थ.... आहाहा! मैंने शरीर को हिलाया, मैं वाणी बोला। आहाहा! उस बाह्य पदार्थ में मुझसे कुछ हुआ, यह तुझे भ्रान्ति है। होशियार, सब होशियारी है सभी। सुमनभाई! यह होशियार व्यक्ति है। आठ हजार वेतन। नहीं? छह हजार वेतन था। वहाँ बेल्जियम गये थे। अपने को कहाँ खबर है? लोग बातें करे, किसी के पास इतना है और किसी के पास इतना है। ऐई! आहाहा! .....मेरे माँ-बापूजी यहाँ रहे, मेरे गुरु देश में रहे, मुझे वहाँ जाना पड़े ऐसा है। ऐसा सुना है, हों! आहाहा!

भाई! तू कहाँ है? तू राग में है? तू शरीर में है? तू राजकोट में है? तू मुम्बई में है? आहाहा! भाई! तू तो आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु तू ऐसा, वहाँ तू है। समझ में आया? ऐसा न मानकर मैं यहाँ हूँ, इसमें हूँ और इसमें हूँ—ऐसी बाह्य चीज़ों में अपनापना मानना, वह भ्रान्ति है। आहाहा! यह बहुत संक्षिप्त में भाषा बेचारे ने की है। यहाँ सुन गये थे न! छोटालालभाई गुलाबचन्द। लिखा है, समाधितन्त्र महाराज के पास सुना, उसके संस्कार हैं। ....वहाँ है, सामने आगे हैं।

बाह्य पदार्थ.... प्रभु चैतन्य में तो आनन्द और ज्ञानस्वभाव है, इसके अतिरिक्त बाह्य पदार्थों में भ्रान्ति, उसे आत्मा माने, वह बहिरात्मा है। वह अब विस्तार करेंगे। **विकल्प,....** चित्त को कहा था न चित्त वहाँ? यह विकल्प उठे वह मैं। आहाहा! अब यहाँ तो बड़े पैसेवाले, स्त्रियोंवाले, इज्जतवाले। ऐई! नौतमभाई! क्या करना यह?

मुमुक्षु : क्या करना। आप उपाय बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तेरी चीज़ नहीं। तेरी हो, वह भिन्न कैसे रहे? और तेरी हो वह पृथक् कैसे हो? आहाहा!

ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा को छोड़कर ऐसी बाह्य चीज़ों में कहीं भी, अरे! बाहर प्रसिद्ध होऊँ, बाहर गिनती में आऊँ, ऐसी जो बुद्धि, वह भी बाह्य को अपना

मानता है। आहाहा! मैं ऐसा होऊँ। दुनिया मुझे कुछ गिनती में ले। अरे! प्रभु! क्या है तुझे?

मुमुक्षु : कुछ नया करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नया करना कुछ। आहाहा! यह नया नहीं? जो अनादि से नहीं हुआ, ऐसा मैं चैतन्यमूर्ति हूँ। मेरा स्वरूप स्व के आश्रय से प्रगट होता है। है तो है। परन्तु वह प्रगट होता है पर्याय में-अवस्था में, वह मेरे आश्रय से प्रगट होता है। आहाहा! और एक ओर आश्रय से प्रगटे तथा एक ओर कहे, पर्याय का द्रव्य कर्ता नहीं। यह तो कोई गजब बात है न! यह बात तो अनेकान्तमार्ग वीतराग का (ऐसा है)। आहाहा!

यह चित्त के **विकल्प, रागादि दोष....** लो, यह पुण्य-पाप के भाव, वे दोष हैं, कहते हैं। आहाहा! **और चैतन्यस्वरूप आत्मा के विषय में जिसको भ्रान्ति नहीं है,....** समझ में आया? यह लेना है न यहाँ तो। वह जिसे नहीं **अर्थात् जो विकार को विकाररूप से; और आत्मा को आत्मारूप से—** आहाहा! यह शुभभाव है, यह भी परवस्तु है, यह पुद्गल के परिणाम हैं, ऐसा कहा है। उसमें निर्मल पर्याय है, उसे परद्रव्य कहा है। आहाहा! नियमसार, ५० (गाथा)। क्योंकि जो नयी पर्याय प्रगट होती है, वह जैसे परद्रव्य से प्रगट नहीं होती, वैसे ही निर्मल पर्याय में से नयी प्रगट नहीं होती, इस हिसाब से (निर्मल पर्याय) परद्रव्य है। आहाहा! दृष्टि द्रव्य में कराने के लिये। यह प्रयोजन है, भाई! समझ में आया? आहाहा! जिसे यह भ्रान्ति नहीं। विकार होता है परन्तु विकार को विकाररूप **और आत्मा को आत्मारूप से—एक-दूसरे से भिन्न समझता है,....** समझ में आया? यह '**अन्तरात्मा**' **है।** वह बहिरात्मा का था, यह अन्तरात्मा। आहाहा!

ऐसा आत्मा है, ऐसा वह दृष्टि में और ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप न हो, तब तक उसने आत्मा माना नहीं। है तो है। परन्तु है का स्वीकार हो तो वह है तुझे। आहाहा! यह छठवीं (गाथा) में कहा न? छठवीं गाथा। उस पर दृष्टि पड़ने पर.... वहाँ तो इतना लिया है कि पर से लक्ष्य छोड़ने पर। राग से छोड़ने पर, ऐसा नहीं लिया। क्योंकि राग

तो है। वह पर का लक्ष्य छोड़ने से वह दृष्टि द्रव्य पर जाती है। उस द्रव्य की जिसने सेवा की, उसके लिये अस्ति जो शुद्ध की अस्ति है, उसके लिये अस्ति है। अस्ति का अस्तिभाव दृष्टि में न आवे, उसे कहाँ अस्ति है? जो वस्तु है, जिस प्रकार से अस्ति है, उस प्रकार से दृष्टि में आये बिना यह है, ऐसा आया कहाँ से? आहाहा! मान लेना है? धार लेना है? समझ में आया? ऐसा मार्ग, बापू! आहाहा!

अन्तरात्मा है;.... वह अन्तरात्मा है। विकार को विकाररूप से, ज्ञान विकार में गये बिना, ज्ञान में राग का ज्ञान आवे, वह राग में प्रविष्ट हुए बिना.... आहाहा! उस राग का ज्ञान यहाँ होता है, वह ज्ञान द्वारा ज्ञान हुआ है। राग द्वारा राग का ज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो अनन्त जन्म, जरा, मरण के अन्त लाने की बात है, भाई! प्रसन्न होना और थोड़ा पुण्य किया, कुछ व्रत पालन किये, भाई! वह तो सब मिथ्या भ्रान्ति में भ्रम में पड़कर परिभ्रमण करने के वे तो लक्षण हैं। समझ में आया?

कहते हैं, उस विकार को विकाररूप से जाने अर्थात् क्या? उस विकार को विकाररूप से जाने और आत्मा को आत्मारूप से जाने। आहाहा! इसका अर्थ कि आत्मा को आत्मारूप से ज्ञान में आया ज्ञेय, तब राग को रागरूप का अस्तित्व अपना स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, उससे विकार को विकाररूप से जानता है, यह भी व्यवहार है। विकार सम्बन्धी का अपना जो स्व-परप्रकाशक ज्ञान है, उसे वह जानता है। ऐसा सूक्ष्म बहुत, भाई! मार्ग ऐसा है। निर्विकल्प समाधि का मार्ग है। समाधितन्त्र है न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह भी समाधि है, शान्ति है, निर्विकल्पदशा है, वीतरागी धारा है। आहाहा! समझ में आया? दो बात हुई। बहिरात्मा और अन्तरात्मा।

जो रागादि दोषों से सर्वथा रहित हैं,.... उसमें तो ऐसा कहा न, विकार है, विकार को जानता है। अब इन्हें विकार नहीं। परमात्मा है न ऊपर? **रागादि दोषों से सर्वथा रहित हैं,...** आहाहा! **अत्यन्त निर्मल हैं...** पाठ है यह तो। **और सर्वज्ञ हैं, वे 'परमात्मा' हैं।** आहाहा! इन तीन की अवस्था का वास्तविक स्वरूप यह है। आहाहा!

विशेष :- बहिरात्मा - जो शरीरादि (शरीर, वाणी, मन इत्यादि) अजीव हैं,

उनमें जीव की कल्पना करता है तथा जीव में अजीव की कल्पना करता है;.... मेरे जीव में यह राग हुआ, इसलिए मैं रागी हूँ। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! महाव्रत के परिणाम जो हैं, वह मुझसे हुए हैं। व्यवहारनय के शास्त्र में तो ऐसा ही आता है। व्यवहारनय के ग्रन्थ में चरणानुयोग में (ऐसा आता है कि) महाव्रत पालना, अतिचार टालना, दोष लगे तो प्रायश्चित लेना। ऐसा विकल्प / वृत्ति होती है। वह मेरी भूमिका के योग्य यह (वस्तु) नहीं है। वह भूमिका भले रही हो। छठवें गुणस्थान में, पाँचवें में... उस भूमिका में ऐसे विकल्पों की जाति नहीं होती। विकल्प अपने नहीं मानता, परन्तु इस दशा में ऐसी जो दशा से विरुद्ध के विकल्प न हों, ऐसा जानकर उनसे विमुख होता है। समझ में आया? आहाहा!

तथा जीव में अजीव की कल्पना करता है; दुःखदायी राग-द्वेषादि विभावभावों को सुखदायी समझता है;.... आहाहा! पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव वे दुःख के दातार हैं। दायी है न? दायी / दातार। आहाहा! उसे सुखदाता मानता है। एक व्यक्ति यहाँ नहीं आया था? वह कहे, कषाय मन्द है, उतनी शान्ति तो है न? सुना न हो न! एक व्यक्ति नहीं था? भीखू.... वह कहे, कषाय—शुभभाव है, उस समय शान्ति तो है। शुभभाव है, बापू! वह तो आकुलता है।

मुमुक्षु : उस मन्द आकुलता को ही शान्ति मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे शान्ति मानता है। आहाहा!

शान्ति तो कषाय के भाव से रहित, जो आत्मा का अकषाय स्वरूप ही है। अर्थात् कि शान्त स्वभाव ही है, अर्थात् कि वीतरागमूर्ति ही प्रभु है। आहाहा! उसमें से वीतरागता का अंश जो आवे, उसका नाम शान्ति कहा जाता है। राग का अंश शान्ति कहाँ कहलाये?

पुण्य और पाप आदि विभाव। रागादि शब्द है न? **विभावभावों को सुखदायी समझता है;....** आहाहा! इन शुभभाव को सुख का दाता मानता है। हम भक्ति करते हैं भगवान की, व्रत पालते हैं तो उसमें से सुख मिलेगा। बाह्य का ऐसा पालते हैं तो अन्दर में जाया जायेगा। उसके (बाहर के) झुकाववाली दशा हमें अन्तर में ढलने में मदद

करे, ऐसे दु:खदायी को सुखदायी मानता है। आहाहा! दु:खदायी को सुखदायी समझता है। आहाहा! यह मिथ्यात्व है। समझ में आया? **ज्ञान-वैराग्यादि, जो आत्मा को हितकारी है, उन्हें अहितकारी जानकर,...** छहढाला में आता है। छहढाला में आता है। क्या?

मुमुक्षु : आतम हित हेतु विराग ज्ञान, ते लखे आपकूँ कष्टदान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। वह है यह। आहाहा! कण्ठस्थ तो बहुत इस पण्डित ने किया था। परन्तु सब घोटालेवाला। आहाहा! मुखाग्र करे, कण्ठस्थ करे वह वस्तु कहाँ है? आहाहा! परलक्षी ग्यारह अंग का ज्ञान भी अहितकर है। क्योंकि वह ग्यारह अंग का (पढ़ा), तथापि सुख तो नहीं आया। अर्थात् मिथ्यात्व रहा और दु:ख रहा। आहाहा! समझ में आया? लोगों को ऐसा लगे, एकान्त.... एकान्त.... एकान्त है। सम्यक् एकान्त ही है। अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त है। तब अनेकान्त का सच्चा ज्ञान होता है। आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञान-वैराग्यादि....** अन्तर का ज्ञान करना, उसे अहितकारी मानता है। **वैराग्यादि....** अर्थात् रागरहित दशा के.... **जो आत्मा को हितकारी है, उन्हें अहितकारी जानकर,....** है। अर्थात् कि उसे प्रगट करने की भावना नहीं है। इसलिए अहितकारी जानता है। आहाहा! समझ में आया? **उन्हें अहितकारी जानकर, अरुचि या द्वेष करता है;....** मनुष्य नहीं कहते? कि भाई! चारित्र तो दूध के दाँत से लोहे के चना चबाना है, बापू! चारित्र ऐसा है। वह तो चारित्र को दु:खदायी माना। समझ में आया? दूध के दाँत से लोहे के चने चबाने जैसा चारित्र। अरे! बापू! वह चारित्र नहीं, भाई! तूने चारित्र को गाली दी है। चारित्र तो स्वरूप में आनन्द दे। स्वरूप में रमणता और अतीन्द्रिय आनन्द दे, वह चारित्र है। आहाहा! कहते हैं, उसके प्रति अरुचि और द्वेष करे, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

शुभकर्मफल को भला.... एक पृष्ठ तो बड़ा भरा है, नहीं? २०० गाथा का समयसार। बड़ा पृष्ठ बड़ा भरा है। २०० गाथा। **शुभकर्मफल को भला....** शुभ कर्मफल। पैसे का ढ़ेर हो, मकान सस्ते मिले, पाँच लाख का मकान पचास हजार में मिले। ऐई! उसे पैसा चाहिए हो और इतना सब कोई देनेवाला न हो। फिर सेठिया को बुलाकर कहे, बापू! इसमें से इतना दो। कितना अपने को लाभ हुआ। देखो! पाँच लाख का कहा

और पचास हमार में देता है। उसमें क्या हुआ? तुझे लाभ क्या हुआ? नुकसान हुआ, तुझे भ्रमणा हुई। आहाहा!

और अशुभकर्मफल को बुरा मानकर,.... अशुभ कर्मफल। निन्दा कोई करता हो, शरीर में रोग हो, विधुरपना हो, निसन्तानपना हो। अरे! यह तो.... आहाहा! है? वह **अशुभकर्मफल को बुरा मानकर, उनके प्रति राग-द्वेष करता है; शरीर के जन्म से, अपना जन्म....** माने। आहाहा! जन्म जयन्ती मनाओ। किसका जन्म? भाई! समझ में आया? बात तो यह है। जन्म-जयन्ती मनावे तो प्रसन्न हो, आहा! मेरा जन्मदिन। तू जन्मा हों? ऐई! आहाहा! **शरीर के जन्म से, अपना जन्म....** मानकर प्रसन्न होता है। यह जयन्ती मनावे तो प्रसन्न होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जयन्ती मनावे तो नाराज हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे क्या है, वह तो जगत के भाव हैं, जैसा करना हो, वैसा करे। जन्म कहाँ था तेरा? आत्मा कब जन्मे? शरीर के जन्म को तू अपना जन्म मानकर उसकी प्रशंसा करनेवाले को, तू उनसे प्रसन्न होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! कुछ आया और जगत को कुछ ख्याल में आया, तो कहे, मनाओ जन्म जयन्ती। किसकी जन्म जयन्ती? आहाहा! जन्म तो जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सृष्टि खड़ी की.... आहाहा! उस जन्म को स्वयं प्रशंसा करता है। दूसरा जाने, न जाने, उसके साथ क्या? समझ में आया? उसे छोटे-छोटे ऐसे भाव में शल्य रह गयी है। समझ में आया?

और नाश से, अपना नाश मानता है,... अब मैं यहाँ रहनेवाला नहीं, हों! अब मेरी स्थिति पूरी हो गयी। वह तो शरीर की स्थिति पूरी हुई। तेरी कहाँ से हुई? देह की स्थिति पूरी हुई। देह की स्थिति पूरी (हुई), उसमें अब मैं पूरा हो गया। आहाहा! यह सब भ्रान्ति है। **वह मिथ्यादृष्टि 'बहिरात्मा' है।**

ये शरीरादि जड़पदार्थ, प्रगटरूप से आत्मा से भिन्न हैं; ये कोई पदार्थ, आत्मा के नहीं हैं; आत्मा से पर (भिन्न) ही हैं,.... सादी भाषा में बहुत सादा.... **तथापि उन्हें अपना मानना और शरीर की बोलने-चलने आदि क्रिया....** लो, ठीक! मैं बोलूँ, मैं

चलूँ, मेरी गति हाथी जैसी है, अमुक की गति गधे जैसी है। अरे! वह तो जड़ की क्रिया गति तो बाहर की। आहाहा! वह मैं करता हूँ। लो, शास्त्र में ऐसा आता है कि साधु को ईर्यासमिति में सामने जीव दिखायी दे तो पैर को ऊँचा कर लेना। ईर्यासमिति की बात बहुत आती है। यहाँ कहते हैं कि मैं ऊँचा करता हूँ, ऐसा माने वह मिथ्यात्व है। आहाहा! भाई! मार्ग वीतराग का सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग आडोलित गया अभी बहुत। वाड़ा में तो कुछ गन्ध भी नहीं रही तत्त्व की। गन्ध रही नहीं, इसकी दिक्कत नहीं परन्तु उल्टी दशायें। कुछ भान नहीं आत्मा कौन, देव कौन, गुरु कौन। यह दीक्षा लेकर हो गये साधु।

कहते हैं, **आत्मा से पर (भिन्न) ही हैं, तथापि उन्हें अपना मानना और शरीर की बोलने-चलने आदि क्रियाओं को मैं करता हूँ, इनसे मुझे लाभ-अलाभ होता है;....** शरीर बराबर चले तो मुझे लाभ हो, शरीर बराबर ठीक न हो तो मुझे नुकसान हो। आहाहा! समय-समय की पर्याय में इसकी भूल कहाँ है, यह कहते हैं। समय-समय में भिन्न चीज़ को अपने से मानना... आहाहा! वह तो मिथ्यात्वभाव है। बहिरात्मा है। यहाँ तो आत्मा से पर है, तथापि उसे अपना मानना, शरीर की बोलने की (क्रिया मेरी), **यह शरीर मेरा है, मैं पुरुष,...** लो! मैं आदमी हूँ। मिथ्यात्वभाव है। **मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं राजा, मैं रंक,....** हूँ। भाई! हम तो गरीब लोग कहलाते हैं। हम तो किसी की मजदूरी करके रोटिया खाते हैं। बापू! रंकपना वह तू है? आहाहा! **मैं रागी,....** यह शुभभाववाला मैं और वह मेरा। अहं और मम। शुभराग वह मेरा और मैं उसका। आहाहा! तो फिर यह पिता-पुत्र का कहाँ रहा? ऐई!

मुमुक्षु : जगत के स्वतन्त्र पदार्थ में पिता-पुत्र, माता-पिता कहाँ रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्य-गुरु भी कहाँ हैं? जीव को और यह शिष्य और यह गुरु, ऐसा है उसमें? आहाहा! व्यवहार की इस जंजाल में कहीं-कहीं उलझ जाये। आहाहा! काँटा के गणीया में सर्प घुसे न, काँटा को गणीया समझतें हो? दस-बीस मण का हो न.... उसमें सर्प कहीं आकर यदि उसमें घुसा... आहाहा! चारों ओर काँटे लगे, खून निकले। बाहर जाये तो हजारों चींटिया चिपके। उसी प्रकार इस जगत में से

परवस्तु को अपनी माने, वह मिथ्यात्व में गया और उसे आकुलता का वेदन है। आहाहा! गजब बातें, भाई! किसकी नौकरी करे कौन?

मैं रंक, मैं रागी, मैं द्वेषी, मैं सफेद,.... मेरा शरीर गोरा है, यह गोरा वह मैं। आहाहा! गोरा और काला, वह तो जड़ की दशा है। मैं कोमल हूँ, मेरी काठी निर्बल है पहले से। यह काठी अर्थात् शरीर। आहाहा! भाई! तूने कहाँ माना तुझे? इसमें डाला है न? इसका शरीर जीर्ण है न? शब्दकोश इतना संक्षिप्त किया है कि ओहोहा! भगवान के शरीर में जैसे उपशम रस के परमाणु थे, ऐसे सब शान्त रस के परमाणु यहाँ इकट्ठे हुए। कहाँ का कहाँ लगावे? आहाहा! भक्तामर में नहीं आता? जितने शान्त परमाणु थे, वे सब भगवान के शरीर में आये। उन परमाणु को और आत्मा को क्या सम्बन्ध?

मैं काला—इस प्रकार बाह्यपदार्थों से अपने आत्मा को भिन्न नहीं जानता, वह परपदार्थों को ही आत्मा मानता है.... आहाहा! **और मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत जीव-अजीवतत्त्वों के स्वरूप में भ्रान्ति से प्रवर्तता है,....** आहाहा! शरीर का सद्उपयोग करना, भाई! जवानी है, उसके शरीर में से माल निकालना अपवास करके। कस-कस निकालना। क्या कस निकालना? वहाँ कस है? कस तो आत्मा में है।

मुमुक्षु : शरीर का कस आत्मा में आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं लोग। शरीर मजबूत हो तो अपवास करके गलाना। शरीर पतला पड़े तो आत्मा को धर्म का निर्जरा का लाभ हो अपवास से। यहाँ कहते हैं कि वह सब मूर्खाई है तेरी मान्यता। आहाहा!

इस प्रकार बाह्यपदार्थों से अपने आत्मा को भिन्न नहीं जानता, वह परपदार्थों को ही आत्मा मानता है और मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत जीव-अजीवतत्त्वों के स्वरूप में भ्रान्ति से प्रवर्तता है, वह जीव 'बहिरात्मा' है। परपदार्थों में आत्मभ्रान्ति के कारण यह अज्ञानी जीव, रात-दिन विषयों की चाहरूप दावानल में जल रहा है,.... आहाहा! विषय की मिठास है जिसे—मूढ़ को। आहाहा! समझ में आया? सुन्दर गोरी स्त्री और मधुर भाषा करे, वहाँ इस विषय में कितना मजा है? मूढ़ है, बापू! वह पर में सुख की कल्पना तूने की है, भगवान आनन्द का नाथ, उसकी तूने हिंसा की है। समझ में आया?

उसकी तो खबर नहीं और फिर कहे, हम हैं समकिती। ठीक भाई! कौन इनकार करता है।

अज्ञानी जीव, विषयों की चाहरूप.... देखो! चाह है न, उसे चाहना? इज्जत की चाहना, अपने शरीर की सुन्दरता बतलाने की चाहना, दूसरे की सुन्दरता देखने की चाहना... आहाहा! यह **दावानल में रात-दिन जल रहा है,....** आहाहा! छह खण्ड का राजा हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, परन्तु उसकी-परपदार्थ की चाह है मिथ्यादृष्टि को। आहाहा! वे सब सुख के साधन हैं—(ऐसा मानता है), वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। चाहे तो जैन का साधु हुआ हो तो भी वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया?

आत्मशान्ति खो बैठा है,.... पर में सुख की चाहना से आत्मा की शान्ति का नाश होता है। समझ में आया? **अतीन्द्रिय चैतन्य आत्मा को भूलकर, बाह्य इन्द्रिय विषयों में मूर्छित हो रहा है और आकुलतारहित मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता।** आहाहा! कहो, पोपटभाई! आहाहा! क्या कहलाता है यह? वड़ोदरा की नहीं? भूल-भूलैया। मेंहदी भूल-भूलैया। वडोदरा। मेंहदी में प्रवेश करे, परन्तु फिर निकलना (कहाँ) कुछ खबर नहीं पड़ती। फिर उसका व्यक्ति हो और पैसा देना पड़े कि चार आना, आठ आना। बापू! इसमें निकलना कहाँ से हमारे? (संवत्) १९६३ की बात है। अफीम का केस चलता था न। झूठा.... एकदम झूठा। सवा महीने चला, वहाँ देखने जाते थे। उसने कहा, रुपया दो। हमने कहा, आठ आना (देंगे)। .....अफीमवाले के साथ हमें क्या काम? इसमें विवाद उठा और सात सौ का खर्च। और छह महीने उलझे रहे। वहाँ एक बार देखने गये। मेंहदी की भूल-भूलैया है न। घुसे अवश्य, निकलना कहाँ से? ...ऐसे.... ऐसे.... ऐसे.... उस व्यक्ति को कहा बापू! यह रास्ता कहाँ से है? वह यहाँ से ऐसे निकलो वहाँ निकलेगा। आहाहा! ऐसे भूल-भूलैया के रास्ते चढ़ गया है अनादि से। समझ में आया? यह परमात्मा निकलने का बताते हैं। इस रास्ते से निकल, बापू! यह .... आड़े-टेढ़े.... आड़े-टेढ़े.... मेंहदी में। इतने.... इतने.... वापस कूदकर निकला नहीं जाये, इतने ऊँचे हों। आहाहा! वह एक भूल-भूलैया है, कहते हैं।

बाह्य इन्द्रिय के विषयों में, शब्द में, रूप में, रस में, गन्ध में.... आहाहा! शब्द

से मुझे ज्ञान होता है, पर से मुझे लाभ होता है, यह सब पर के विषय में मूर्च्छित हो गया है। **और आकुलतारहित मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता।**

अन्तरात्मा - चैतन्य लक्षणवाला जीव है.... यह तो जाननेवाला.... जाननेवाला.... जाननेवाला.... ऐसे लक्षण से लक्ष्य हो सकता है। ऐसी यह चीज़ है। किसी भी गुरु से, देव से या विकल्प से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! अपने स्वभाव से प्रत्यक्ष ज्ञात हो ऐसा, प्रत्यक्ष ज्ञाता है। उसे दूसरे प्रकार से माने, वह भ्रमणा है। आहाहा! समझ में आया? **उससे विपरीत लक्षणवाला अजीव है। आत्मा का स्वभाव, ज्ञाता-दृष्टा है, अमूर्तिक है....** उसमें कोई वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। आहाहा! **और शरीरादि परद्रव्य हैं, वे पुद्गल पिण्डरूप जड़ हैं, विनाशीक हैं; वे मेरे नहीं और मैं उनका नहीं —ऐसा भेदविज्ञान करनेवाला सम्यग्दृष्टि, 'अन्तरात्मा' है।** आहाहा! समझ में आया?

ऐसा भेदविज्ञान करनेवाला.... अर्थात् कि जैसा है, वैसी भिन्नता जाननेवाला। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि, 'अन्तरात्मा' है।** बस, तब इतना जाने वहाँ अन्तरात्मा हो गया? कोई व्रत पाले नहीं, उपवास किये नहीं। आहाहा! भाई! अभी तो तदुपरान्त पाँचवाँ गुणस्थान आवे, वह स्वरूप और शान्ति का आश्रय बढ़ जाये, उसे उसमें व्रत के विकल्प हों, वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! तुझे कहाँ से आ गये व्रत के विकल्प? आहाहा! जिसकी शान्ति, सर्वार्थसिद्धि के देव समकिती, उससे जिसकी शान्ति अन्दर बढ़ जाये। आहाहा! उसे पाँचवाँ गुणस्थान कहते हैं और उसे बारह व्रत के आस्रव के उस जाति के विकल्प होते हैं। और श्रावक के छह कर्तव्य होते हैं न? दिन-प्रतिदिन। देवदर्शन, गुरुसेवा, दान, तप, संयम, इस जाति का ऐसा विकल्प आता है, उस भूमिका में (आता है), ऐसा बतलाया है। समझ में आया? वह कर्तव्यरूप से है, ऐसा व्यवहारनय के कथन में यह आता है। निश्चय से उसे मेरा कर्तव्य है, ऐसा माने... आहाहा! तो उसे भेदज्ञान नहीं है। यह तो भेदज्ञान करनेवाले सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा हैं। आहाहा!

वह जानता है कि.... धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव **'मैं देह से भिन्न हूँ; देहादि मेरे नहीं हैं; मेरा तो एक ज्ञान-दर्शन लक्षणरूप शाश्वत आत्मा ही है;....** लो, देखो! पर्याय का अंश भी नहीं लिया यहाँ। माननेवाली पर्याय है। परन्तु उसका लक्ष्य जो है, वह पूर्ण शाश्वत्

है। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसा धर्म कैसा? सोनगढ़वालों ने नया निकाला है? भगवान! नया नहीं। भगवान ने कहा हुआ यह मार्ग है। तूने सुना न हो, इसलिए नया हो गया? बिल्ली के बच्चे को सात दिन घुमावे और ४९ दिन हो, तब आँखें (खोले).... ओहोहो! यह जगत है? परन्तु तेरी आँखें नहीं थी, तब भी जगत था। तुझे आँखों में आया तब ऐसा लगा (कि) यह जगत है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जहाँ आँख खोली अन्दर में... ओहो! ऐसा आत्मा! ऐसा अनादि से है। तुझे जब दृष्टि में आया तब तुझे (खबर पड़ी), यह आत्मा! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अन्य सर्व संयोग लक्षणवाले (व्यावहारिकभाव) जो कोई भाव हैं, वे सब मुझसे भिन्न हैं। आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान-वैराग्यरूप भाव प्रगट होता है, वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण और मुझको हितरूप है.... भाषा क्या है? **आत्मा के आश्रय से....** सर्व क्रियाकाण्ड करके और दया पालन की, वह संवर-निर्जरा नहीं। आहाहा! **आत्मा के आश्रय से....** तो आत्मा कैसा है, यह जाना हो, उसके आश्रय से। आहाहा! **जो ज्ञान-वैराग्यरूप भाव प्रगट होता है,....** पर्याय कहनी है न यहाँ तो? **वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण....** वह संवर और निर्जरा - मोक्ष का कारण होकर **मुझको हितरूप है तथा बाह्यपदार्थों के आश्रय से जो....** दो आश्रय लिये, देखा? इसकी बात आयेगी विशेष....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)